BIHAR SHODH SAMAAGAM, VOL. 2, ISSUE 1, p.p 10-13 (2024)

सामाजिक और आर्थिक सापेक्षता का अध्ययन

डा. माला यादव

सारांश :

ऐसा देखा गया है कि एशिया तथा अफ्रीका के देश जो कई सदियों की दासता के पश्चात स्वतंत्र हुए हैं, एवं वे देश जो दूसरों की अपेक्षा अधिक द्रुत गति से आगे बढ़ सके हैं उन सभी का विकास एक कुशल, उत्तरदायी तथा ईमानदार लोक सेवा के फलस्वरूप ही संभव बन सका है। विश्व में लिया विश्व युद्ध के पश्चात यह स्पष्ट हुआ कि नव–निर्मित राज्यों में कई राज्य दूसरों की अपेक्षा कम विकसित थे। इन कम विकसित राज्यों में भारत भी एक था। सीमित प्राकृतिक साधन तथा निरन्तर प्राकृतिक आपदाओं का सामना करता हुआ यह राज्य आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था। एक कुशल एवं जागृत राजनीतिक नेतृत्व तथा दक्ष लोक सेवा के सम्मिलित प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत आज प्रगतिशील राज्यों में से एक है। यह नहीं कि इसने अपनी निर्धनता से जुड़ी समस्याओं को हल कर लिया है किन्तु यह भी सर्वविदित है कि जड़त्व एवं निरन्तर पिछड़ेपन की अवस्था को छोड़ यह राज्य आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों के कई आयामों में पूर्व से अधिक उन्नत है। यह प्रगति की यात्रा पूर्णतया संतोषप्रद तो नहीं मानी जा सकती तथापि एक ऐसा आधार अवश्य निर्मित हो चुका है जहाँ पर विकास के एक विशाल भवन का निर्माण करना पहले से अधिक सहज है।

मुख्य शब्द :– संसाधन, सीमित, विकसित, राजनीतिक, पिछड़ा, निर्धनता, आर्थिक

प्रस्तावना :–

वैश्विक समाज में किसी भी देश में प्रशासन की भूमिका को नजंरअंदाज नही किया जा सकता है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में उदारीकरण एवं निजीकरण के पक्ष में काफी आवाज उठायी जा रही है तथापि विकास प्रक्रिया में राज्य एवं सरकार की भूमिका किसी प्रकार से संकुचित नहीं होती। हाल ही में नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो॰ अमृत्य सेन के सिद्धान्तों के अनुरूप भारत में एक ऐसी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें निजीकरण एवं उदारीकरण के साथ–साथ एक उत्तरदायित्वपूर्ण एवं प्रतिबद्ध सरकार अपनी भूमिका दक्षता से निभा सके। आवश्यकता इन दोनों उन्मुखीकरणों के संश्लेषण की है लोक प्रशासन के माध्यम से न कि इनमें से किसी एक को चुनने की। विकासशील देशों में लोक सेवाओं या सेवीवर्ग प्रशासन को अनेक परिवेशात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसे आर्थिक विकास, सामाजिक सुधार, राजनीतिक स्थिरता, शिक्षा का प्रसार, समाज सुरक्षा आदि कार्यों की दिशा में उल्लेखनीय दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। देश का नियोजित आर्थिक विकास भी अनेक नए दायित्व सौंपता है। विकासशील देशों का एक दुःखद तथ्य यह है कि यहाँ वांछनीय परिवर्तन लाने वाला मुख्य यन्त्र सरकार होती है तथा गैर–सरकारी संस्थाएँ सरकार के नियन्त्रण और निर्देशन के अधीन ही कुछ कार्य कर पाती हैं। अतः नौकरशाही का कार्यक्षेत्र एवं प्रभाव क्षेत्र बढ़ जाता है। अपने परिवर्तित दायित्वों का निर्वाह करने के लिए नौकरशाही के संगठन तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना वांछनीय है।

भारतीय प्रशासन की सामाजिक एवं आर्थिक विकास में भूमिका प्रशासन किसी भी देश के समाज तथा उसकी राजनीति का एक अविभाज्य अंग होता है। समाज का स्वरूप तथा राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति प्रशासन के दर्शन में परिलक्षित होती है और इसका सबसे सजीव प्रमाण उस देश की लोक सेवाओं में आने वाला अधिकारी वर्ग होता है। ब्यूरोक्रेसी अथवा प्रशासन तन्त्र जिसे जन–साधारण प्रशासन का पर्यायवाची समझता है, किसी भी प्रशासन की रीति–नीतियों एवं पद्धतियों के चयन में निर्णायक भूमिका का निर्वाह करता है। आधुनिक संसार में लोक सेवा के महत्त्व को बताते हुए ऑग ने संक्षेप में कहा है कि "सरकार का कार्य केवल राज्य सचिव तथा विभागों के अन्य प्रधानों, मण्डलों के सभापति, संसदीय अवर सचिवों, कनिष्ठ अधिपति तथा विशिष्ट अधिपति अर्थात् मन्त्रिगण द्वारा ही पूर्ण नहीं किया जा सकता। इन लोगों से यह आशा कभी नहीं की जाती कि वे कर एकत्र करें एवं लेखा परीक्षण, कारखानों का निरीक्षण, जनगणना आदि कार्य करें, हिसाब रखने, डाक के वितरण और समाचार ले जाने की तो बात तो दूर है। ऐसे बहुमुखी कार्य तो उन अधिकारियों तथा कर्मचारियों द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं जिन्हें स्थाई लोक सेवक

डा. माला यादव शोद्यार्थी
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय

कहा जाता है। स्त्री–पुरूषों का यह विशाल समूह ही देश के एक छोर से दूसरे छोर तक विधि का पालन करता है और इन्ही के द्वारा जन–साधारण नित्यप्रति राष्ट्रीय सरकार के निकट सम्पर्क में आता है। जनता की दृष्टि में इस निकाय का महत्त्व भले ही कम हो, किन्तु मन्त्रालयों के लिए काम करने वालों की यह सेना सरकार के उन उद्देश्यों को, जिनके लिए सरकार विद्यमान है, पूर्ण करने के लिए कम आवश्यक नहीं है।" लोक सेवाएँ देश के सामाजिक जीवन को व्यवस्था और सुरक्षा प्रदान करती हैं। देश के विकास तथा शान्ति–व्यवस्था की दृष्टि से राजनीतिक स्तर पर जो निर्णय लिये जाते हैं, उनको कार्य रूप देकर लोक सेवाएँ देश की शान्ति–व्यवस्था को सुदृढ़ आधार प्रदान करती हैं। सरकार द्वारा व्यवस्थापिका के मंच पर तथा उसके बाहर जनता को अनेक प्रकार के आश्वासन दिए जाते हैं। इन आश्वासनों को पूरा करने के लिए लोक सेवाओं द्वारा योजनाबद्ध रूप से प्रयास किए जाते हैं। लोक सेवाएँ नीति–रचना में सहयोगी की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। वह अपने व्यापक प्रशासकीय ज्ञान तथा दीर्धकालीन अनुभव के आधार पर प्रशासन के तकनीकी पक्ष तथा अन्य बारीकियों को मन्त्रियों के सामने प्रस्तुत करती हैं। आज लोक सेवाओं का महत्त्वपूर्ण कार्य राजनीतिक निर्णय को कार्यान्वित करना नहीं वरन् राजनीतिज्ञों को यह परामर्श देना है कि उनको क्या निर्णय लेना चाहिए। फिशर के कथनानुसार, प्रशासनिक अधिकारियों का परम्परागत कर्त्तव्य यह है कि जब निर्णय लिए जा रहे हों तो वे अपने राजनीतिक अध्यक्षों को बिना किसी भय तथा पक्षपात के अपना सारा अनुभव तथा जानकारी बता दें, चाहे उनका परामर्शमन्त्री के प्रारम्भिक दृष्टिकोण के अनुकूल हो अथवा न हो। लोक सेवाएँ जन–सेवा के लिए समर्पित होती हैं। बी॰ सुब्रह्माण्यम ने लिखा है, "महाभारत के व्यास जैसे सन्त, वुडरो विल्सन जैसे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा चाणक्य जैसे राजनीतिशास्त्री या पाल एपलबी जैसे प्रशासनिक सुधारकों ने नागरिक कल्याण के लिए समर्पित लोक सेवा पर जोर दिया है।" लोक सेवाएँ जनतान्त्रिक व्यवस्था के सफल संचालन में अनेक दृष्टियों से सहयोग करती हैं। संसदीय देशों में मन्त्रिगण अपने कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए प्रत्येक कदम पर लोक सेवकों का सहारा लेना पड़ता है। सांसदों के प्रश्नों का उत्तर लोक सेवकों द्वारा तैयार किया जाता है। मन्त्री महोदय अपने अनेक दोषों को लोक सेवकों पर डालकर अपना तात्कालिक बचाव कर लेते हैं। उदाहरण, के लिए भारत में छठे लोकसभाई निर्वाचनों के समय (मार्च 1977) जब विरोधी दलों द्वारा कांग्रेस सरकार की परिवार नियोजन के लिए की गई ज्यादतियों का उल्लेख किया गया तो कॉंग्रेस ने अपने स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए नौकरशाही पर दोषारोपण किया था। नारमन जे॰ पावेल का कहना है कि उत्तरदायित्व की सांविधानिक व्यवस्था में नौकरशाही का कार्य निश्चय ही बढ़ जाता है। लोक सेवाएँ सरकार की प्रतिनिधि प्रकृति को वास्तविक बनाती हैं, ते जनहित की साधना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं तथा विकास कार्यों को बुद्धिपूर्वक संचालित करती हैं। लोक सेवाओं के बिना उत्तरदायी सरकार का कार्य–संचालन कठिन बन जाता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री चैम्बरलेन ने लोक सेवकों को सम्बोधित करते हुए इस कठिनाई को स्वीकार कर कहा था कि "मुझे विश्वास है कि आप लोग हम लोगों के बिना भी विभाग का प्रशासन कर सकते हैं, किन्तु मुझे आशंका है कि हम लोग आपके बिना विभागीय कार्य नहीं कर सकेंगे।" लोक सेवाएँ सरकारी नीति की रचना और कार्यान्विति के प्रायः सभी स्तरों पर कार्य करती हैं।

राज्य के बढ़ते हुए कार्यों के साथ–साथ कार्मिक–वर्ग का योग एवं महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है। पहले जबकि सरकारें प्रबन्ध–नीति में विश्वास करती थीं और अपने कार्यों को केवल समाज में कानून–व्यवस्था बनाए रखने तक ही सीमित रखतीं थीं, उस समय तो कर्मचारी वर्ग के कार्य भी इन थोड़े से उद्देश्यों की पूर्ति तक ही सीमित थे। परन्तु विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति के वर्तमान युग में राज्य की क्रियाओं में असाधारण रूप से वृद्धि हुई है। आजकल तो राज्य जन्म से लेकर मृत्यु–पर्यन्त मानवीय कल्याण कार्यों में संलग्न रहता है। राज्य की क्रियाएँ अत्यन्त विस्तृत तथा विविध प्रकार की हो गई हैं। प्रत्येक स्थान पर राज्य वर्तमान रहता है और कोई भी नागरिक राज्य के प्रभाव और उसकी शक्तियों से बच कर नहीं रह पाता। राज्य उन पर सिविल सेवकों के माध्यम से नागरिकों तक पहुँचता है जो कि प्रशिक्षण–प्राप्त, निपुण, स्थायी तथा व्यावसायिक रूप से कार्य करने वाले वैतनिक अधिकारी होते हैं। अपनी व्यापक शक्तियों तथा कार्यक्षेत्र के करण लोक सेवक वास्तविक सत्ताधारी बन जाते हैं। रेमजेम्योर की मान्यता है कि नीति–रचना, निर्णय–प्रक्रिया एवं निर्णयों की कार्यान्विति में लोक सेवकों का इतना प्रभाव रहता है कि मंत्रिगण उनकी कठपुतली मात्र बनकर रह जाते हैं। लोक सेवाओं के प्रभावपूर्ण योगदान

के सम्बन्ध में लॉस्की ने लिखा है कि "यह सरकार को संचालित करती है, आम चुनाव के परिणामों के जोखिम को सन्तुलित करती है तथा निष्पक्ष रूप से व्यावहारिक है, उससे जन–इच्छा को जोड़कर राजनीतिक यंत्र में तेल देने का कार्य करती है।" प्रजातन्त्रत्मक सरकार का सच्चा मापदण्ड बदलती हुई सामाजिक आवश्यकताओं को पहचानना और उनके अनुसार कार्य करना है। वर्तमान समय में सरकार के कार्य पर्याप्त विस्तृत हो गए हैं क्योंकि जनता की माँग है कि सामान्य कल्याण को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक प्रत्येक कार्य सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। आज समाज के प्रत्येक वर्ग के विभिन्न कार्य सरकार ने अपने ऊपर ले लिए हैं। उद्योगों में कार्य करने वाले मजदूर अपनी सुरक्षा के लिए सरकार की ओर देखते हैं।

सामाजिक–आर्थिक विकास पर प्रशासन का प्रभाव

विकासशील देशों में लोक सेवाओं या सेवीवर्ग प्रशासन को अनेक परिवेशात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसे आर्थिक विकास, सामाजिक सुधार, राजनीतिक स्थिरता, शिक्षा का प्रसार, समाज सुरक्षा आदि कार्यों की दिशा में उल्लेखनीय दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। देश का नियोजित आर्थिक विकास भी अनेक नए दायित्व सौंपता है। विकासशील देशों का एक दुःखद तथ्य यह है कि यहाँ वांछनीय परिवर्तन लाने वाला मुख्य यन्त्र सरकार होती है तथा गैर–सरकारी संस्थाएँ सरकार के नियन्त्रण और निर्देशन के अधीन ही कुछ कार्य कर पाती हैं। अतः नौकरशाही का कार्यक्षेत्र एवं प्रभाव क्षेत्र बढ़ जाता है। अपने परिवर्तित दायित्वों का निर्वाह करने के लिए नौकरशाही के संगठन तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना वांछनीय है। इस सम्बन्ध में कोठारी एवं राय का कहना सही है कि "यदि एक प्रमुख सामाजिक परिवर्तनकर्त्ता के रूप में सरकारी नौकरशाही को सफल होना है तो इसे कुछ परम्परागत दृष्टिकोण एवं काम के तरीकों को छोड़ना होगा। जिस जनता पर इसे शासन करने की आदत थी उसके प्रति दृष्टिकोण एवं काम के तरीकों को छोड़ना होगा। जिस जनता पर इसे शासन करने की आदत थी उसके प्रति दृष्टिकोण बदल कर सहभागिता निर्मित करनी होगी।" विकासवादी नीतियों के कारण सेवीवर्ग प्रशासन की रूप–रचना पर मुख्य रूप से निम्नलिखित
प्रभाव पड़ते हैं–

☐ जन–आकाँक्षाओं के प्रति सजग दृष्टिकोण – विकासशील देशों की नौकरशाही काफी संवेदशील होती है। यह सदैव सजग तथा सतर्क प्रतीक्षा और शंका की दृष्टि से नौकरशाही कार्यों का मूल्याँकन करते हुए यह जानने का प्रयत्न करती है कि नौकरशाही उनकी समस्याओं के समाधान तथा विकास की दृष्टि से क्या कर रही है। साधनहीन, क्षमताहीन जन–साधारण अपनी समस्त समस्याओं का समाधान स्वयं नहीं कर पाता है। अतः नौकरशाही से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी नीति एवं कार्यक्रम तय करते समय जन–आकाँक्षाओं का समुचित ध्यान रखे।

☐ जनसाधारण के साथ घनिष्ठ सहयोग – पं॰ जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि "प्रशासनिक अधिकारी, चाहे किसी भी स्तर का हो, करोड़ों–करोड़ों जनों से सम्बन्ध रखता है। इन लोगों की समस्याएँ कार्यालय में बैठे–बैठे आदेश प्रसारित करने मात्र से दूर नहीं हो जातीं वरन् इनके समाधान के लिए, उनके करोड़ों हाथों का सहयोग आवश्यक है।" ऐसी स्थिति में आम जनता को कार्य करने के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है। नौकरशाही को जनता के शासन की भाँति नहीं वरन् सेवक तथा सहयोगी की भाँति व्यवहार करना चाहिए।

☐ उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण – विकासशील देशों की नौकरशाही व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के प्रति उत्तरदायी रहकर कार्य करती है। यहाँ की कार्यपालिका राजनीतिक अस्थिरता की समस्या से ग्रस्त रहकर जन–आकाँक्षाओं की पूर्ति का प्रयास करती है। विकास–कार्यों के क्षेत्र में की गई उपलब्धियाँ उनके जन–समर्थन तथा राजनीतिक स्थिरता का आधार बनती है। अतः यह आवश्यक है कि नौकरशाही निरन्तर मन्त्रियों के निर्देशन तथा नियन्त्रण में रहकर कार्य करे और विकास कार्यों में सफलता का सेहरा स्वयं के सिर बाँधने की अपेक्षा सारा श्रेय मन्त्रियों को ही लेने दे।

उपसंहार :–

संक्षेप में ऐसे कोई भी जन–जीवन से जुड़े कार्य नहीं जोकि लोक सेवकों के उत्तरदायित्वों की परिधि से परे हों। एक प्रशासनिक राज्य एवं कल्याणकारी राज्य की भूमिका निभाने वाले प्रदेश की सरकार में नियुक्त लोक सेवक उन सभी उत्तरदायित्वों का वहन करते हैं जो कि जन–कल्याण एवं जन–सुरक्षा से जुड़े हों। आवश्यकता इस बात की है कि इन महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को ईमानदारी से निभाया जाये तथा प्रत्येक लोक सेवक की शैजी एवं व्यवहार में "लोक" अर्थात् "जनता" की सेवा को तन्मयता से करने की भावना झलकती हो।

संदर्भ सूची :–

1. बासुकी नाथ, चौधरी एवं युवराज कुमार, भारतीय शासन एवं राजनीति, ओरिएण्ट पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 217–218

2. ए. एस. नांरग, भारतीय शासन एवं राजनीति, मैकमिलन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली पृ. 112–113

3. बिधुत चक्रवर्ती, प्रकाश चंद, वैश्वीकृत दुनिया में लोक प्रशासन, सेज पब्लिशर्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, सुभाष नगर, पृ. 440–442

4. डॉ. ए. पी. अवस्थी, विकास प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा पृ. 70–71

5. रजनी कोठारी, भारत में राजनीति, कल और आज, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 144–145

6. एम. एस. ए. राव, सोशल मूवमेंट्स इन इंडिया, मनोहर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 165–166

7. अमर्त्य सेन, भारत विकास की दिशाएं, राजपाल एंड सन्स पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 70–71

8. अभय प्रसाद सिंह, समकालीन भारत में विकास की प्रक्रिया और सामाजिक आंदोलन, ओरियण्ट ब्लैकस्वॉन, हैदराबाद, पृ. 210–211